साहित्येतिहास- लेखक के रूप में आचार्य रामचंद्र शुक्ल

□ डॉ. इशरत खान

आचार्य रामचंद्रशुक्ल प्रतिभा संपन्न साहित्यकार थे। उनकी साहित्य साधना अत्यंत गहन थी। उन्होंने साहित्य की अनेक विधाओं का सफलतापूर्वक प्रयोग किया था। वे कवि, आलोचक, निबंधकार, अनुवादक, कहानी-लेखक सभी कुछ थे। लेकिन उनकी प्रतिभा का पूर्ण विकास निबंधकार, आलोचक एवं इतिहास-लेखक के रूप में ही मिलता है।

शुक्ल जी हिंदी साहित्य के पटु इतिहास लेखक थे,– इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है, उनके द्वारा लिखित हिंदी साहित्य का इतिहास। हिंदी साहित्य का इतिहास लिखने वालों में शुक्ल जी ही एक ऐसे व्यक्ति हैं, जिन्होंने हिंदी साहित्य का एक सुंदर और अपने युग की सीमाओं के अनुसार पहली बार पूर्ण इतिहास प्रस्तुत किया था। शुक्ल जी के पूर्व यद्यपि चार-पाँच इतिहास-ग्रंथ प्रकाशित हो चुके थे, परंतु उनमें अनेक त्रुटियाँ थीं। इतिहासकार गार्सां- द-तासी और शिवसिंह सेंगर ने केवल कवियों का परिचय मात्र दिया था। लेकिन वह भी कालक्रमानुसार न था और नहीं वहाँ साहित्यिक प्रवृत्तियों का परिचय दिया गया था। लेकिन हम यह तो कह ही सकते हैं कि सामग्री संकलन की दृष्टि से प्रारंभिक इतिहासकारों का कार्य भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण रहा है। इन ग्रंथों को आधार मानकर ही ग्रियर्सन ने हिंदी साहित्य को विविध कालों में विभाजित करने का प्रयास किया। इस दिशा में मिश्रबंधुओं ने अवश्य प्रशंसनीय कार्य किया है, लेकिन अनेक त्रुटियों के कारण मिश्रबंधु विनोद सही माने में इतिहास-ग्रंथ न हो सका। आशय यह है कि आचार्य शुक्ल के पूर्व जिन इतिहास-ग्रंथों का प्रणयन हुआ, उनमें अनेक कमियाँ थीं, जो निम्नलिखित हैं :–

१. उनमें कवियों का विवरण और कृतियों का संग्रह मात्र किया गया है, जिसमें वैज्ञानिकता एवं प्रामाणिकता दृष्टिगोचर नहीं होती।

२. युगीन परिस्थितियों, प्रवृत्तियों का विवेचन उपलब्ध नहीं है।

३. काल- विभाजन का आधार दोषपूर्ण रहा है।

४. नवीन दृष्टिकोण और शैली का अभाव रहा है।

शुक्ल जी ने सबसे पहला ऐसा इतिहास प्रस्तुत किया जिसमें युग की प्रमुख प्रवृत्तियों के साथ-साथ उस युग की सभी प्रकार की परिस्थितियों का वैज्ञानिक विवेचन किया गया है। इसके साथ ही हिंदी के साहित्यकारों का परिचय, उनकी आलोचना तथा अन्य अनेक विवादास्पद समस्याओं का संतुलित विवेचन किया गया है।

आचार्य शुक्ल कृत 'हिंदी साहित्य का इतिहास', 'हिंदी शब्दसागर' की भूमिका के रूप में लिखा गया था। इसके पश्चात् शुक्ल जी ने, हिंदी साहित्य का व्यवस्थित एवं वैज्ञानिक अध्ययन कर, उसको वर्तमान रूप में पुस्तकाकार प्रकाशित करवाया था। यह इतिहास-ग्रंथ, हिंदी साहित्य के अन्य सभी परवर्ती इतिहासकारों का प्रेरक और पथ प्रदर्शक रहा है।

ग्रंथ के आरंभ में शुक्ल जी ने साहित्येतिहास एवं काल-विभाजन संबंधी दृष्टिकोण स्पष्ट करते हुए लिखा है :-

"शिक्षित जनता की जिन-जिन प्रवृत्तियों के अनुसार हमारे साहित्य स्वरूप में जो परिवर्तन होते आए हैं, जिन-जिन प्रभावों की प्रेरणा से काव्य-धारा की भिन्न- भिन्न शाखाएँ फूटती रही हैं, उन सबके सम्यक् निरूपण तथा उनकी दृष्टि से किए गए सुसंगत काल विभाग के बिना साहित्य के इतिहास का सच्चा अध्ययन कठिन दिखाई पड़ता था।"[१]

उपर्युक्त उदाहरण से ज्ञात होता है कि शुक्ल जी की साहित्येतिहास संबंधी धारणा वैज्ञानिक थी। वे साहित्य, संस्कृति और मानव को सामाजिक परिवेश में देखने के पक्षपाती थे। उन्होंने साहित्येतिहास संबंधी सभी विचारधाराओं का विश्लेषण सामाजिकता के आधार पर किया है। अतः उन्होंने सामाजिक परिस्थितियों के अंतर्गत ही काल-विभाजन, नामकरण एवं प्रवृत्तियों का विवेचन किया है। शुक्ल जी साहित्य की रचना का कारण व्यक्ति को नहीं, बल्कि समाज को मानते हैं। इसी कारण साहित्य के इतिहास की परिभाषा देते हुए कहते हैं :-

"जब कि प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता की चित्तवृत्ति का संचित प्रतिबिंब होता है, तब यह निश्चित है कि जनता की चित्तवृत्ति के परिवर्तन के साथ-साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला जाता है। आदि से अंत तक इन्हीं चित्तवृत्तियों की परंपरा को परखते हुए साहित्य परंपरा के साथ उनका सामंजस्य दिखाना ही 'साहित्य का इतिहास' कहलाता है।"[२]

साहित्येतिहास की परिभाषा देने के उपरांत शुक्ल जी ने हिंदी साहित्य के ९०० वर्षों को चार सुस्पष्ट कालों में विभाजित किया है।

१) आदिकाल (वीरगाथा काल) संवत् १०५०- १३७५ वि.

२) पूर्वमध्यकाल (भक्तिकाल) संवत् १३७५- १७०० वि.

३) उत्तर मध्यकाल (रीतिकाल) संवत् १७०० - १९०० वि.

४) आधुनिक काल (गद्यकाल) संवत् १९००- १९८४ वि.[३]

शुक्ल जी ने उपर्युक्त काल- विभाजन के आधार को भी स्पष्ट किया है। आचार्य शुक्ल से पूर्व के इतिहास ग्रंथों में वैज्ञानिक काल- विभाजन का अभाव पाया जाता है। हिंदी साहित्य के प्रारंभिक इतिहासकारों (तासी एवं सेंगर) का तो इस ओर ध्यान ही नहीं गया। अतः उनकी चर्चा यहाँ अनावश्यक है। इस संबंध में सबसे पहला प्रयास डॉ. जॉर्ज ग्रियर्सन ने किया है। उन्होंने अपने ग्रंथ को ११ काल खंडों में विभाजित किया है। यह काल -विभाजन युग विशेष का प्रतिनिधित्व कम करते हैं। इसके अतिरिक्त इस ग्रंथ में कालों का नामकरण भी किसी एक आधार पर नहीं किया गया है। कहीं किसी धार्मिक संप्रदाय को इसका आधार बताया गया

है, तो कहीं किसी शासक विशेष को आधार बताया गया है और कहीं शताब्दी का ही उल्लेखमात्र किया गया है। ग्रियर्सन के बाद मिश्रबंधुओं ने अपने 'मिश्रबंधु विनोद' में कालविभाजन का नया प्रयास किया जो ग्रियर्सन के काल- विभाजन की अपेक्षा अधिक व्यवस्थित एवं वैज्ञानिक कहा जा सकता है।

उनका काल विभाजन इस प्रकार हैं :-

१. पूर्व प्रारंभिक काल (संवत् ७००- १३४६ वि.)

२. उत्तर प्रारंभिक काल (संवत् १३४७- १४४४ वि.)

३. पूर्व माध्यमिक काल (संवत् १४४५- १५६० वि.)

४. प्रौढ माध्यमिक काल (संवत् १५६१- १६८० वि.)

५. पूर्व अलंकृत काल (संवत् १६८१- १७९० वि.)

६. उत्तर अलंकृत काल (संवत् १७९१- १८८९ वि.)

७. अज्ञात काल

८. परिवर्तन काल (संवत् १८९०- १९२६ वि.)

९. वर्तमान काल (संवत् १९२७- १९९० वि.)

अज्ञात काल और वर्तमान काल, यह काल विभाग अनावश्यक किए गए हैं। आचार्य शुक्ल के काल- विभाजन की यदि मिश्रबंधुओं के कालविभाजन से तुलना की जाए तो शुक्ल जी के इतिहास की कई विशेषताएँ सामने आएँगी। एक तो उन्होंने हिंदी साहित्य के प्रारंभिक काल की सीमा संवत् ७०० वि. के स्थान पर संवत् १०५० मानी है, दूसरे उन्होंने मिश्रबंधुओं के द्वारा किए काल विभागों की कुल संख्या नौ (९) से घटाकर चार तक सीमित कर दी। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि ग्रियर्सन और मिश्रबंधुओं के काल-विभाजन की अपेक्षा शुक्ल जी का काल-विभाजन अधिक प्रामाणिक है। अपनी इसी विशेषता के कारण वह आज तक बहुमान्य एवं बहुप्रचलित है।

आचार्य शुक्ल ने संपूर्ण हिंदी साहित्य को चार कालों में विभाजित किया है। इसके साथ ही कालों के उपविभाग भी किए गए हैं। यह विभाजन मनमाने ढंग पर नहीं किया गया है, बल्कि विभिन्न विचारधाराओं के आधार पर यह विभाजन किया गया है। इस संबंध में शुक्ल जी ने अपने ग्रंथ की भूमिका में लिखा है—

"एक ही काल और एक ही कोटि की रचना के भीतर जहाँ भिन्न- भिन्न प्रकार की परंपराएँ चली हुई पाई गई हैं, वहाँ अलग-अलग शाखाएँ करके सामग्री का विभाग किया गया है। जैसे भक्तिकाल के भीतर पहले तो दो काव्यधाराएँ- निर्गुण धारा और सगुण धारा - निर्दिष्ट की गई हैं। फिर प्रत्येक धारा की दो- दो शाखाएँ स्पष्ट रूप से लक्षित हुई हैं- निर्गुण धारा की ज्ञानाश्रयी शाखा और प्रेममार्गी शाखा तथा सगुण धारा की रामभक्ति शाखा और कृष्णभक्ति शाखा। इन धाराओं और शाखाओं की प्रतिष्ठा यों ही मनमाने ढंग पर नहीं की गई है। उनकी एक दूसरे से अलग करनेवाली विशेषताएँ अच्छी तरह दिखाई भी गई हैं और देखते ही ध्यान में आ भी जाएँगी।" [४]

उपर्युक्त विभाजन से भक्तिकाल का दार्शनिक एवं धार्मिक स्वरूप प्रकट होता है और इस काल विभाजन से, भक्तिकाल का अध्ययन करने में बहुत सहायता मिल सकती है। इस प्रकार शुक्ल जी ने साहित्यिकों, आलोचकों और शोधकर्ताओं के लिए सरल एवं सीधा मार्ग खोल दिया है।

इतिहास लेखक के रूप में आचार्य शुक्ल की सबसे बड़ी उपलब्धि है, कवियों एवं साहित्यकारों के जीवन-चरित्र के स्थान पर उनकी रचनाओं की विशेषता बताना तथा आलोचना करना। उन्होंने अपने इतिहास -ग्रंथ में प्रमुख कवियों का ही साहित्यिक मूल्यांकन किया है। कबीर, सूर, जायसी और तुलसी का विस्तृत परिचय दिया गया है। मिश्रबंधुओं की अपेक्षा शुक्ल जी के ग्रंथ में कवियों की संख्या सीमित है।

जिस सुगठित रूप में, आचार्य शुक्ल ने कवियों का प्रामाणिक एवं वैज्ञानिक परिचय दिया है, वैसा प्रामाणिक परिचय उनसे पूर्व के इतिहास ग्रंथों में नहीं मिलता । इस तथ्य के प्रकाश में शुक्ल की महानता एवं योग्यता प्रमाणित होती है। इसी प्रकार प्रत्येक काल की परिस्थितियों और प्रवृत्तियों के परिचय में भी उन्हें अपूर्व सफलता प्राप्त हुई है। रीतिकाल के नामकरण, प्रवृत्तियों और कवियों के विषय में उन्होंने जो सूचनाएँ दी हैं, वे बहुत कुछ अंशों में आज भी मान्य हैं।

साहित्येतिहास के उपेक्षित अंगों और उपांगों को ध्यान में रखते हुए, उपलब्ध सामग्री का उपयोग करते हुए आचार्य शुक्ल ने हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन को एक स्वस्थ धरातल दिया। ग्रंथ के अंत में ग्रंथानुक्रमणिका [५] और नामानुक्रमणिका [६] देकर उन्होंने अपनी वैज्ञानिक दृष्टि और अनुसंधानप्रक्रिया से भी परिचय कराया।

उपर्युक्त तत्त्व इतिहास लेखन के लिए आवश्यक होते हैं। इस प्रकार इतिहास-लेखन के तत्त्वों के प्रकाश में यह ग्रंथ अपनी कुछ एक अपूर्णताओं के बावजूद खरा उतरता है। इस इतिहास के पूर्व जितने भी इतिहास लिखे गए हैं, उनमें इन तत्त्वों का सर्वथा अभाव पाया जाता है। शुक्लोत्तर इतिहास-ग्रंथों में इन्हीं तत्त्वों का अनुसरण किया गया है। अंतर केवल इतना है कि शुक्ल जी ने उस समय तक उपलब्ध सामग्री के आधार पर अपने इतिहास का ढाँचा खड़ा किया है जब कि परवर्ती इतिहास -ग्रंथों में नई उपलब्ध सामग्री का भी उपयोग किया गया है। अतः नवोपलब्ध सामग्री के प्रकाश में कुछ त्रुटियाँ दृष्टिगत होने लगी हैं।

शुक्ल जी ने जिन आधारों को लेकर काल-विभाजन किया है, वह आज, विद्वानों के मध्य आलोचना का विषय बन गया है। जैसे :-

१. वीरगाथा काल नामकरण, ज्ञानाभाव के कारण असंतोषप्रद है। इस काल के विषय में सबसे अधिक प्रकाश हज़ारीप्रसाद द्विवेदी ने डाला है। [७]

२. भक्तिकाल के उद्‌भव से संबंधित उनकी धारणा अयथार्थ सिद्ध हुई है। उन्होंने अपने ग्रंथ में भक्तिकाल के उद्‌भव संबंधी विचारों को व्यक्त करते हुए लिखा है—

"अपने पौरुष से हताश जाति के लिए भगवान की शक्ति और करुणा की ओर ध्यान ले जाने के अतिरिक्त दूसरा मार्ग ही क्या था ?[८]

३. आधुनिक काल का विवेचन अपेक्षित सहानुभूति एवं रागात्मक अभाव के कारण असंतोषप्रद है।

४. जैन धर्म की पुस्तकों को धर्मविषयक कहकर निकाल दिया गया है[९], जब कि इनमें भी उपयोगी सामग्री मिल सकती है।

इन त्रुटियों के होते हुए भी रीतिकाल और आधुनिककाल नाम आज तक मान्य है। कवि परिचय में जीवन परिचय को महत्त्व न देकर, आचार्य शुक्ल ने उनकी रचनाओं के आलोचनात्मक मूल्यांकन को महत्त्व दिया, जिससे समीक्षात्मक दृष्टि का बोध होता है। कवियों को योग्यतानुसार ही इतिहास में स्थान दिया गया है। यही कारण है कि चंदबरदाई, कबीर, सूर, तुलसी, जायसी, केशव और बिहारी आदि प्रमुख कवियों का ही विस्तृत परिचय दिया गया है। शुक्लोत्तर इतिहास-ग्रंथों में भी इनका विस्तृत परिचय देखने को मिलता है।

उपर्युक्त तथ्यों के प्रकाश में हम कह सकते हैं कि साहित्येतिहास लेखक के रूप में आचार्य शुक्ल का महत्त्व असंदिग्ध है। शुक्ल जी का इतिहास-ग्रंथ हिंदी साहित्य का प्रथम ग्रंथ है, जिसमें व्यापक दृष्टि, व्यवस्थित अनुसंधान प्रवृत्ति, संतुलित एवं वैज्ञानिक लेखन शक्ति, युगीन परिस्थितियों का परिचय, सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं धार्मिक मूल्यों के विश्लेषण की परख आदि का समावेश किया गया है।

इन तथ्यों के अभाव में कोई भी ग्रंथ, वैज्ञानिक इतिहास-ग्रंथ नहीं कहा जा सकता है। इसलिए हिंदी साहित्य के इतिहास- लेखन की दीर्घ- परंपरा में आचार्य शुक्ल का योगदान अत्यंत महत्त्वपूर्ण है।

संदर्भ :

१. आचार्य रामचंद्र शुक्ल- हिंदी साहित्य का इतिहास २३ वाँ संस्करण, प्रथम संस्करण का वक्तव्य, पृष्ठ संख्या १

२. वही- काल- विभाग पृष्ठ १

३. वही- पृष्ठ १

४. आचार्य शुक्ल: हिंदी साहित्य का इतिहास, प्रथम संस्करण का वक्तव्य पृष्ठ ६

५. आचार्य शुक्ल: हिंदी साहित्य का इतिहास पृ. सं. ४०५ से ४२४ (ग्रंथ)

६. वही- पृ. सं. ३९३- ४०४ (ग्रंथकार)

७. आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी: हिंदी साहित्य का आदिकाल। पृ. सं. १०-११

८. आचार्य शुक्ल: हिंदी साहित्य का इतिहास पृ. सं. ३४

९. वही: प्रथम संस्करण का वक्तव्य